(सन्देश १६) - अक्टूबर 2011 का द्वितीय पाक्षिक निवेदन -

"...तांस्तथैव भजाम्यहम्"

पंक्ति संख्या

ये यथा मां प्रपद्यन्ते **तांस्तथैव भजाम्यहम्**।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

अर्थात् *"हे पार्थ! जो मनुष्य जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार से आश्रय देता हूँ, (क्योंकि) सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग का अनुसरण करने को बाध्य हैं"* (गीता ४/११)।

१. मनुष्य द्वारा भगवान् की शरण लेना - यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक है, जो मनुष्य के सभी व्यवहारों के लिये पथप्रदर्शक है। "प्रपद्यन्ते" शब्द का आशय "प्रपत्ति" अर्थात् शरण लेने से है। भगवान् प्रत्येक भूत-प्राणी के अन्तरात्मा हैं, सब के आदि, मध्य और अन्त में वे ही हैं (गीता १०/२०)। इस प्रकार मनुष्य जो भी व्यवहार किसी भी भूत-प्राणी के साथ करता है, **वह व्यवहार वास्तव में भगवान् के साथ ही होता है,** अतः वह जाने-अनजाने में उनका ही आश्रय लेता है। उपरोक्त श्लोक के अनुसार भगवान् भी फिर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार **भगवान् उसे आश्रय देते ही हैं अर्थात् उसके कल्याण की व्यवस्था करते हैं** (गीता ९/१८), चाहे व्यवहार करने वाले का भाव आश्रय लेने का हो या न हो। यदि भाव भी आश्रय लेने का हो, तब तो फिर कहना ही क्या है!

२. भगवान् द्वारा आश्रय देना - मनुष्य द्वारा किये जाने वाले व्यवहार में उसका भाव कुछ भी हो, **आश्रय देते समय भगवान् का भाव तो परम सुहृदता का ही होता है** (गीता ५/२९)। यदि व्यवहार करते समय मनुष्य का भाव हिंसा, द्वेष आदि का हो तो भगवान् द्वारा की गयी क्रिया भी उसी प्रकार की होती है। किन्तु वे उसके भाव के अनुसार उससे द्वेष नहीं करते, केवल उसकी क्रिया के अनुसार क्रिया करके उसका कल्याण ही करते हैं और इस प्रकार उसे अपना आश्रय देते हैं। उदाहरणार्थ - रावण ने वैर भाव से भगवान् राम के साथ युद्ध किया। भगवान् ने भी उसके साथ किया तो युद्ध ही, किन्तु उसे मारकर अपने धाम में ही स्थान दिया। परिणाम यह हुआ कि मरते समय तक रावण को अपने वैर भाव के अनुसार ही स्वजनों के मारे जाने, स्वर्ण-नगरी लंका के जलाये जाने आदि का दुःख ही हाथ लगा। किन्तु मरणोपरान्त उसे भगवान् के अनन्त आनन्द के धाम में स्थान मिला।

३. भगवान् का मार्ग - श्लोक की दूसरी पंक्ति में भगवान् बताते हैं कि सब मनुष्य सब प्रकार से भगवान् के मार्ग का अर्थात् वेद-मार्ग का अनुसरण करने के लिये बाध्य हैं। **वेद-मार्ग का आधार कर्म के अनुसार कर्मफल की प्राप्ति होना है।** यदि कोई गेहूँ बोता है, तो उसे फल रूप में गेहूँ ही प्राप्त होता है, बाजरा या अन्य कोई अन्न नहीं। सांसारिक कानून में भी चोरी न करने की आज्ञा कहीं नहीं है, केवल चोरी करने के फल का उल्लेख है। यदि कोई चोरी करता है तो कानून के अनुसार वह दण्ड का भागी ही होता है। चोरी करने वाला यह नहीं कह सकता कि चोरी को तो किसी कानून में मना नहीं किया, अतः मैं चोरी करने के लिये स्वतंत्र हूँ। मनुष्य भी कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है, किन्तु फल भोगने में भगवान् के विधान के परतंत्र है।

४. उपसंहार - इस श्लोक के द्वारा भगवान् ने अपने को भक्तों के हाथ में रख दिया है। यदि कोई मनुष्य भगवान् का निरन्तर चिन्तन करता है, तो भगवान् भी निरन्तर उसका चिन्तन करते हैं। यदि मनुष्य भगवान् की उपेक्षा करता है, तो भगवान् भी उसकी उपेक्षा करके प्रारब्धानुसार उसके शुभाशुभ कर्मों का फल भुगतवाकर ही उसका कल्याण करते हैं। निष्कर्ष यह है कि **यदि हम जीवन में आनन्द चाहते हैं तो सभी भूत-प्राणियों के रूप में प्रकट भगवान् को आनन्द दें।** इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है।